(17) बारह भावना (पं मंगतरायजी कृत)

(दोहा)

बंदूँ श्री अरहंत-पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग जीवन हित जान।।1।।

(विष्णुपद छन्द)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम-रु लक्ष्मण, जिन रावण मारा।।
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी।।2।।
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अगनि लगी तन में।।
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं , गुरु बारह भावन को।।3।।

(1) अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै-निकलै, ऋतु फिर-फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै।।
पर्वत पतित नदी-सरिता-जल, बहकर नहिं हटता।
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता।।4।।
ओस-बूंद ज्यों गले धूप में, वा अंजुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझै प्रानी।।
इंद्रजाल आकाश नगर सम, जग-संपति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी।।5।।

(2) अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को, घेरा भव वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में।।
मन्त्र यन्त्र सेना धन संपति, राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे।।6।।

चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया।।
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूं ही उमर खोई।।7।।

(3) संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता।।
छेदन-भेदन नरक पशुगति, वध बंधन सहना।
राग-उदय से दुःख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना।।8।।
भोगि पुण्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली।।
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचम गति सुख मिले, शुभाशुभ का मेटो लेखा।।9।।

(4) एकत्व भावना

जन्मै-मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी।।
कमला चलत न पैड़ जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा।।10।।
ज्यों मेले में पंथी जन मिल, नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा, पंछी आ करते।।
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक-थक हारै।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै।।11।।

(5) अन्यत्व भावना

मोह रूप मृग-तृष्णा जल में, मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौड़े थक-थक के।।
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई माने अपनी, भेद नहीं करता।।12।।

तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले-अनादि यतन तैं बिछुड़ै, ज्यों पय अरु पानी।।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौ लों पौरुष थकै न तौ लों, उद्यम सो चरना।।13।।

(6) अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली।।
मात-पिता रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
माँस-हाड़ नश लहू-राध की, प्रकट व्याधि घेरी।।14।।
काना पौंडा पड़ा हाथ यह, चूसै तो रोवै।
फलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषै बोवै।।
केसर-चंदन पुष्प सुगन्धित वस्तु देख सारी।
देह परसते होय अपावन, निश दिन मल झारी।।15।।

(7) आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को।।
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निश दिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को।।16।।
पन मिथ्यात योग पन्द्रह, द्वादश-अविरत जानो।
पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।।
मोह भाव की ममता टारै, पर परिणति खोते।
करै मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते।।17।।

(8) संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोकै संवर क्यों नहिं मन लाता।।
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।
दशविध-धर्म परीषह बाईस, बारह भावन को।।18।।

यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते।।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भावन संवर भावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी, मझधार पार जावै।।19।।

(9) निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी।
संवर रोकै कर्म निर्जरा, ह्वै सोखन हारी।।
उदय-भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै , पालविषै माली।।20।।
पहली सबके होय नहीं कुछ, सरै काम तेरा।
दूजी करै जू उद्यम करकै , मिटे जगत फेरा।।
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी।।21।।

(10) लोक भावना

लोक-अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुषरूप कर कटी भये षट्, द्रव्यन सों मानो।।
इसका कोई न करता-हरता, अमिट अनादि है।
जीवरु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधि है ।।22।।
पाप-पुण्य सों जीव जगत में, निज सुख दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर, औरन के धरता।।
मोह कर्म को नाश, मेटकर सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा।।23।।

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन, शुद्ध भाव करना।।
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवे।।25।।

(12) धर्म भावना

एकान्तवाद के धारी जग में, दर्शन बहु तेरे।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर, ज्ञान हरें मेरे।।
हो सुछन्द सब पाप करें सिर, करता के लावे।
कोई छिनक कोई करता से, जग में भटकावे।।26।।

वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिनकी वानी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जा में, सबको सुखदानी।।
इनका चिन्तन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतनतें इकदिन, भव-सागर-तरना।।27।।

(18) बारह भावना (पं दौलतरामजी कृत)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई।।1।।

इन चिन्तत समसुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागे।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै।।2।।

जोबन, गृह, गो-धन, नारी, हय, गय, जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।3।।

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावे कोई।।4।।

चहुँगति दु:ख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा।।5।।

शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।6।।